# रस्म भर न रह जाए शिक्षक दिवस

## चौथी औद्योगिक क्रांति दहलीज पर खड़ी है, पर हमारे शिक्षक दूसरी औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए रोजगार के ढांचे के अनुरूप हैं। शिक्षक दिवस पर विशेष :

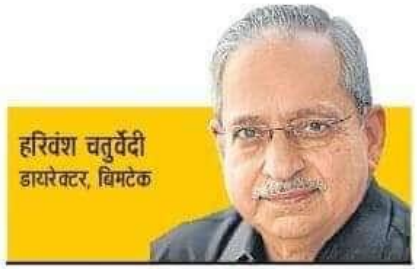

हरिवंश चतुर्वेदी
डायरेक्टर, बिमटेक

देश के पूर्व राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन के जन्मदिन को 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाने का जो सिलसिला 1967 में शुरू हुआ, स्कूल-कॉलेजों में अब वह एक उत्सव का रूप ले चुका है। इस दिन जमकर सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं और शिक्षकों की महिमा के गीत गाए जाते हैं। इस बीच हम यह भूल चुके हैं कि शिक्षक दिवस मनाने के सुझाव के पीछे क्या परिकल्पना रही होगी? सारे देश में मनाए जा रहे शिक्षक दिवस की धूमधाम के बीच आइए, जरा यह सोचें कि हमारे समाज में आज शिक्षा और शिक्षक के पेशे को कितना सम्मान दिया जाता है? क्या आज हम अपने किसी पुराने शिक्षक से मिलकर उतने ही भाव-विभोर होते हैं, जितने किसी नेता, अभिनेता, क्रिकेट स्टार, डांसर, गायक या साधु-संत से मिलने पर होते हैं?

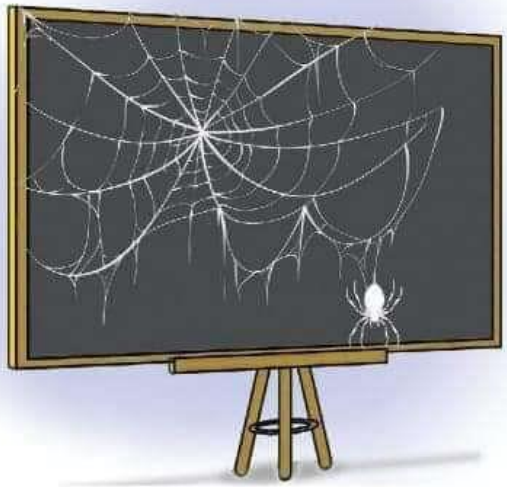

चित्रांकन : डी. श्रीनिवास

हमारी युवा पीढ़ी में कितने ऐसे होंगे, जो शिक्षक बनना चाहेंगे? क्या शिक्षक, लेखक और वैज्ञानिक जैसे पेशों के प्रति हम उदासीन नहीं हैं?

भारतीय अर्थव्यवस्था अभी हाल ही में सकल राष्ट्रीय उत्पादन के आधार पर दुनिया में पांचवें नंबर पर पहुंच गई है। अगले कुछ वर्षों में हम तीसरे स्थान पर भी पहुंचने की उम्मीद रखते हैं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2024 तक भारतीय अर्थव्यवस्था को पांच ट्रिलियन डॉलर इकोनॉमी बनाने का लक्ष्य रखा है। क्या शिक्षा व्यवस्था में बड़े गुणात्मक परिवर्तन और सुधारों के बिना यह संभव होगा? चौथी औद्योगिक क्रांति हमारे दरवाजे खटखटा रही है, किंतु हमारी मौजूदा शिक्षा प्रणाली अभी भी 19वीं सदी में हुई दूसरी औद्योगिक क्रांति से पैदा हुए रोजगार के ढांचे के अनुरूप कवायद कर रही है। पिछले एक दशक में टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में ऐसे युगांतरकारी परिवर्तन आए हैं कि विश्व स्तर पर उद्योगों, व्यवसायों, बाजारों, समाज, शिक्षा, मीडिया और राजनीति में सब कुछ उलट-पलट रहा है। यह 'सब कुछ' इतनी तेजी से घटित हो रहा है कि कभी-कभी हमें लगता है कि हम कोई वैज्ञानिक उपन्यास पढ़ रहे हैं, कोई सपना देख रहे हैं या कोई हॉलीवुड की *एवेंजर* जैसी फिल्म देख रहे हैं। सूचना क्रांति ने दुनिया को बदलने में एक बड़ी भूमिका निभाई थी, किंतु चौथी औद्योगिक क्रांति ऐसे बड़े बदलाव लाने जा रही है, जिनकी कोई कल्पना नहीं कर पाएगा।

पर क्या हमारे राजनेता, नीति-निर्माता, शिक्षक और विद्यार्थी इस कटु सत्य से वाकिफ हैं कि आजकल उपलब्ध अधिकांश रोजगार वर्ष 2030 तक खत्म हो जाएंगे और जो नए रोजगार पैदा होंगे, उनकी तैयारी के लिए आवश्यक शिक्षा, पाठ्यक्रम, उपकरण, शिक्षक और पढ़ाने के तौर-तरीके हमारे पास नहीं हैं। आज विश्व स्तर पर चौथी औद्योगिक क्रांति के अनुरूप 'शिक्षा 4.0' की बहुत चर्चा हो रही है, जिसे मोटे तौर पर चौथी शैक्षणिक क्रांति का नाम दिया जा सकता है। वर्ष 2030 तक पहुंचते-पहुंचते दुनिया में शिक्षक का पेशा खत्म नहीं होने जा रहा है, लेकिन यह तय है कि शिक्षक की महत्ता और भूमिका में बड़े बदलाव आएंगे।

आजादी के बाद भारतीय समाज ज्ञान-विज्ञान, समानता, चरित्र-निर्माण, सामाजिक सद्भाव और सामाजिक सरोकार जैसे मूल्यों के प्रति अपनी निष्ठा लगातार खोता गया है। इसके विपरीत भ्रष्टाचार, धनलिप्सा, स्वार्थ, चालाकी और अवसरवादिता जैसे नकारात्मक मूल्य हमारे समाज पर हावी होते चले गए। इस दौर में शिक्षकों की पेशागत प्रतिबद्धताओं और योग्यताओं में भी लगातार क्षरण होते देखा गया। आजादी के बाद के प्रारंभिक दशकों में शिक्षकों की कार्यदशाएं व वेतन-भत्ते अन्य पेशों की तुलना में कम थे। नतीजतन, पूरे देश में प्राथमिक, स्कूल और कॉलेज-यूनिवर्सिटी शिक्षकों के संगठनों ने शिक्षकों को लामबंद करके लगातार आंदोलन किए। शिक्षकों को राजनीतिक दलों, विधायिका में नामित किया गया और उन्हें चुनाव लड़ने की छूट भी दी गई। शिक्षक संघों के आंदोलनों से जहां उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया, वहीं दूसरी ओर, उन्हें शिक्षा के उन्नयन से लगातार विमुख होते हुए भी देखा गया। क्या स्कूल, कॉलेज तथा यूनिवर्सिटी के शिक्षकों से जुड़े राष्ट्रीय व प्रादेशिक संघ शिक्षा के प्रति शिक्षकों की उदासीनता के लिए उत्तरदायी नहीं हैं?

पिछले तीन दशकों में चौथे वेतन आयोग से लेकर सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के लागू होने से सरकारी कर्मचारियों की तरह शिक्षकों के वेतनमान में लगातार बढ़ोतरी होती गई। सन् 1977 में डिग्री कॉलेज के एक लेक्चरर को करीब हजार रुपये मासिक वेतन मिलता था, जो छठे वेतन आयोग की सिफारिशें लागू होने के बाद लगभग 80,000 रुपये तक पहुंच गया है, यानी 42 वर्षों में 80 गुना। समाज में शिक्षकों की प्रतिष्ठा में गिरावट का कारण उनके आर्थिक स्तर में सुधार के साथ-साथ उनकी पेशागत प्रतिबद्धता में कमी होना भी है। देश के कई राज्यों के जाने-माने विश्वविद्यालयों में अकादमिक सत्र के दौरान कक्षाएं 100 दिन भी न लगना, इसका दुष्परिणाम ही कहा जाएगा।

पिछले 73 वर्षों में कई बार शिक्षा और शिक्षकों के पेशे से संबंधित अनेक नीतियां और कार्यक्रम बनाए गए। सात बार शिक्षकों के वेतनमान को सुधारा गया, किंतु न तो शिक्षा में कोई व्यापक बदलाव आया और न ही शिक्षक के पेशे को समाज में कोई खास अहमियत मिल पाई। इसका एक मुख्य कारण यह रहा कि इन सभी बदलावों की दिशा ऊपर से नीचे की ओर थी और शिक्षकों को शिक्षा व्यवस्था की धुरी नहीं बनाया गया। यह मान लिया गया कि शिक्षक एक बड़ी प्रणाली का पुर्जा मात्र है, जो ठीक वही करता है, जैसे मशीन को चालू करने पर एक पुर्जे को करना होता है।

अभी भारत की स्कूली शिक्षा को लगभग 90 लाख सरकारी शिक्षक चलाते हैं, जो अपर्याप्त हैं। हमें कम से कम 20 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की जरूरत होगी, तभी स्कूली शिक्षा सुचारु रूप से चलेगी। एक अहम सुझाव यह भी है कि तदर्थ शिक्षकों या पैरा शिक्षकों की प्रणाली को खत्म किया जाए, जिससे सभी शिक्षकों को एक जैसी सेवा-शर्तें मिल सकें। स्कूली शिक्षा के अलावा हमारी उच्च शिक्षा में भी 12 लाख से ज्यादा शिक्षक कार्यरत हैं, जो चार करोड़ युवाओं के भाग्य-निर्माता हैं। जाहिर है, आधुनिक भारत के भविष्य की तस्वीर इन 1.2 करोड़ शिक्षकों के हाथों से ही बनाई जाएगी। लेकिन यह तभी मुमकिन हो पाएगा, जब हम यह समझें कि शिक्षा में होने वाले किसी भी बड़े बदलाव को सफल बनाने में उनकी केंद्रीय भूमिका होनी चाहिए।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)